International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

हिन्दी साहित्य में नाटक विद्या का उद्‌भव एवं विकास

संजय कुमार
हिन्दी प्रवक्ता
रा0व0मा0वि0–सूई (भिवानी)

शोध–आलेख सार– वस्तुतः नाटक एक ऐसी विद्या है जो जीवन के हर क्षेत्र में दृष्टिगोचर होती है। वर्तमान सन्दर्भ में यदि नाटक की प्रासंगिकता पर दृष्टिपात किया जाये तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आज सामाजिक समस्याओं को जनता के बीच ले जाने तथा जनजागरूकता लाने में नुक्कड़ नाटकों का खुलकर प्रयोग हो रहा है। चूंकि नाटक समाज के लिए नये भाव व अर्थ का बोध करवाते हैं, इसलिए इनका महत्व सर्वविदित है। अधिंकांश साहित्यकार इस बात से सहमत हैं कि हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग को नाटक विद्या का स्वर्णयुग माना जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग से लेकर स्वाधीनता तक नाटक विद्या के उद्‌भव एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है।

मूलशब्द– नाटक, सामाजिक समस्याएं, जनजागरूकता, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग , प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग।

भूमिका– हिन्दी साहित्य में नाटक विद्या की उत्पति का विकास काफी प्राचीन है। आधुनिक युग में हिन्दी नाटक विद्या ने अपनी विकास यात्रा में अनेकों उतार–चढाव देखें हैं तथा स्वयं को परिस्थितियों के अनुसार ढाला है। इसी कारण नाटक विद्या के कई रूप सामने आये। इनमें रेडियो नाटक, रंगमंच नाटक, दूरदर्शन नाटक, एकांकी नाटक, गीति नाटक तथा नुक्कड़ नाटक प्रमुख हैं।

आचार्य भरतमुनि ने नाटक की उत्पति '**नट्**' धातु से मानी है, जबकि रामचन्द्र गुणचन्द्र ने अपनी रचना 'नाट्य दर्पण' में इसकी उत्पति '**नाट्**' धातु से मानी है, जिसका अर्थ है – अभिनय करना। इस दृष्टि से जो कलाकार घटनाओं का अनुकरण

करके हमारे सामने नाटक प्रस्तुत करते हैं, उन्हें हम अभिनेता कहते हैं। नाटक, रूपक का एक भेद है, परन्तु सुविधा की दृष्टि से रूपक के स्थान पर हम नाटक शब्द का ही प्रयोग करते हैं। इस तरह नाटक भी साहित्य का ही एक रूप है। भारतेन्दु ने नाटक के स्वरूप के अन्दर नाटक को परिभाषित करने के अतिरिक्त नाटककार के बारे में भी कुछ नियमों की व्याख्या की है। उन्होंनें नाटक शब्द का अर्थ बताया है – नट लोगों की क्रिया।[1] नट् लोगों की क्रिया एक ऐसी विद्या है जो अपने प्रभाव से किसी वस्तु के स्वरूप को बदलने में अहम् भूमिका अदा करती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दृश्यकाव्य की संज्ञा के रूपक के रूप में नाटक का प्रयोग किया है और रूपक मात्र को ही नाटक माना है। इस तरह कुछ आलोचक भी दृश्य काव्य, रूपक तथा नाटक को पर्यायवाची मानते हैं। अंततः सुविधा की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में रूपक शब्द की जगह नाटक शब्द का प्रयोग किया जाता है।

यदि नाटक के तत्वों की बात की जाये तो भारतीय आचार्यों ने तीन प्रमुख तत्व माने हैं– वस्तु, नेता और रस। परन्तु पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार नाटक के तत्व सात हैं– कथावस्तु, पात्र और चरित्र चित्रण, संवाद तथा कथोपकथन, देशकाल वातावरण, उद्देश्य, अभिनय, भाषा शैली आदि फिर भी भारतीय नाट्य परम्परा में समय के अनुसार नाटक के तत्व बढते गए और इनको लेकर भारतीय विद्वानों में कई मतभेद उभरे। कुछ विद्वानों ने तो रस को नाटक का अनिवार्य धर्म बताया।

भारतेन्दु युग में नाटक विद्या– वस्तुतः भारतेन्दु युग को नाटक विद्या के उद्भव एवं विकास की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता है। भारतेन्दु युग में 'आनन्द रघुनन्द' तथा 'नहुष' नामक महत्वपूर्ण नाट्य कृतियां निर्मित हुई हैं। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने 'नाटक' नामक अपनी पुस्तक में हिन्दी नाटक की शुरूआत 'देवभाषा प्रपंच', 'प्रभावती' तथा 'आनन्द रघुनन्दन' से की है।[2] इसके अतिरिक्त सोमनाथ गुप्त, दशरथ ओसा, रामचन्द्र शुक्ल तथा गुलाबराय भी विश्वनाथ सिंह के आनन्द रघुनन्दन को ही हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार

गिरधर दास द्वारा रचित 'नहुष' हिन्दी का प्रथम नाटक है। शिल्प कला की दृष्टि से 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक के सभी तत्वों का समावेश स्वीकार किया है, चूंकि तत्कालीन नाटकों की भाषा बृज है और रंगमंच की दृष्टि से इनमें कुछ कमी भी दिखाई देती है फिर भी भारतेन्दु युग में हिन्दी नाटक को नया जीवन मिला है। अन्धेर नगरी, प्रेम योगिनी, सती प्रताप, नीलदेवी, भारत दुर्दशा, वैदिकी हिंसा, कपूर्र मंजरी, मुद्राराक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र आदि नाटकों का अनुवाद भी इस युग में किया गया। इस तरह हिन्दी नाटक विद्या वस्तु और शिल्प की दृष्टि से इस युग में विकसित हुई। इस युग के प्रमुख नाटककार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी, लाला श्रीनिवास दास, तोताराम आदि हैं। अभिनय तथा नाटक रचना में सहयोग देने वाले कुछ प्रसिद्ध विद्वानों ने पुरूषोत्तम दास टण्डन, रामचन्द्र शुक्ल, मुरलीधर मिश्र, रासबिहारी शुक्ल तथा लक्ष्मीकांत भट्ट का नाम सम्मान से लिया जाता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के द्वारा भारतीय तथा यूरोपीय नाटक कला को समन्वय के मार्ग पर लाने का कार्य भी इसी युग में संभव हुआ।[3] स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उसके सहयोगियों ने पूर्व और पश्चिम की नाट्य परम्पराओं का समावेश अपने नाटकों में इस उद्देश्य से किया, ताकि हिन्दी में उनकी तकनीक का ज्ञान शामिल हो सके।[4] इसके अतिरिक्त हिन्दी नाट्ककार और रंगमंच कर्मियों को इसका लाभ पहुंचाना भी उनका उद्देश्य था। यही कारण है कि उन्होंने अन्य भाषाओं से अनुवाद कार्य भी किया और हिन्दी नाट्य क्षेत्र में भारतेन्दु हरिशचन्द्र समन्वयतात्मक बुद्धि लेकर अवतरित हुए।[5] अंततः भारतेन्दु युग के नाटककारों ने समय की सीमाओं में बंधे रहकर भी हिन्दी नाटक को नई दिशा और गति प्रदान की।

द्विवेदी युग में नाट्क विद्या—इस युग में नाटक विद्या के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण विकसित हुआ और मनोरंजन प्रदान करने वाले नाटकों की रचना इस युग में बहुत कम हुई। वस्तुतः इस युग के नाटकों में सभी पात्र सात्विक प्रवृति के महापुरूष थे।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

उदाहरण के लिए वृंदावन लाल वर्मा का पात्र सेनापति ऊदल तथा जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का तुलसीदास ऐसे ही महापुरूष थे जिन्होंने समाज के सामने स्वयं को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया। इस युग के रचनाकार आर्यसमाज के प्रभाव तथा गांधीवादी दृष्टिकोण से प्रभावित थे। चूंकि इस युग में कई सांस्कृतिक और राजनैतिक सुधारवादी आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ, अतः इस युग का साहित्य भी इनके प्रभाव से नहीं बच पाया तथा सम्पूर्ण साहित्य में सुधारवाद का तत्व दिखाई दिया। इस युग के रचनकारों ने भाषाशैली में भी सुधार लाने के प्रयास किये तथा भारतेन्दु युग से शुरू हुआ अनुवादों का सिलसिला जारी रहा। इसके कारण मौलिक नाटकों की रचना बहुत कम हुई और अधिकांश नाटक अनुवादित रूप में ही साहित्य विद्या का भाग बने। विषय की दृष्टि से इस काल के नाटकों को पांच भागों में बांटा जा सकता है–

1. पौराणिक नाटक – श्रीदामा (राधाचरण गोस्वामी), नल–दमयन्ती (महावीर सिंह),

2. ऐतिहासिक नाटक – सेनापति उद्धल (वृंदावन लाल वर्मा),

3.राष्ट्रीय नाटक– कृष्णार्जुन युद्ध (माखनलाल चतुर्वेदी),

4. सामाजिक नाटक– भारत विजय (जीवानंद शर्मा),

5. अनुवादित नाटक– नागानंद (सदानंद अवस्थी), मृच्छकटिक (लाला सीताराम)।

प्रसादयुगीन नाटक– इस युग में हिन्दी नाटक के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी आन्दोलन की शुरूआत हुई। शिल्प की दृष्टि से नाटक विद्या में अमूल–चूल परिवर्तन हुए तथा नाटकों में अंकों और दृश्यों का एक निश्चित रूप निर्धारित हुआ। हिन्दी नाटकों का नवीन शैली में श्रंगार किया गया और उनमें नूतन प्राण प्रतिष्ठा की गई। इस युग में पारसी रंगमंच का प्रभाव भी निरन्तर बना रहा। प्रसाद जी के नाटकों में समृद्ध और भीड़ भरे रूपबंद, घटनाबहुल बहुमुखी कथावस्तु, संवाद और गीत इसी ओर संकेत करते हैं। हिन्दी में जयशंकार प्रसाद ने 1913 में 'करूणालय' नामक पहला गीति नाटक लिखा। इस गीति नाट्य परम्परा को भगवती चरण वर्मा, उदय शंकर भट्ट

तथा सुमित्रानंदन पंत ने आगे बढाया। चूंकि गीति नाटक भी हिन्दी साहित्य विद्या में नया प्रयोग है तथा यह एक ऐसी विद्या है जिसमें गीति तत्व होने के साथ–साथ पात्रों की भावना तथा संघर्ष की भी प्रधानता रहती है। अतः नाटक विद्या में तीव्र अनुभूति की अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए इसमें गीति तत्व का समावेश किया जाता है। इस युग में एकांकी नाटकों की भी रचना हुई। जयशंकर प्रसाद ने 'एक घूंट' नामक एकांकी की रचना की। इस युग में कुछ प्रयोगधर्मी नाटक तथा रंगमंच नाटक भी लिखे गए। यही कारण है कि नाटक विद्या के विकास की दृष्टि से इसका काफी महत्व रहा है। इस समय हिन्दी में पहला रेडियो नाटक भी प्रसारित हुआ। इसमें उपेन्द्र नाथ अश्क, सुमित्रानंदन पंत, सेठ गोविन्द दास तथा रामकुमार वर्मा द्वारा रचित नाटक प्रमुख हैं।

प्रसादोत्तर युग– इस युग में पाश्चात्य नाटक शैली का प्रभाव बढने से हिन्दी नाटक विद्या शैली में क्रांतिकारी परिवर्तन आये। इस युग के नाटककारों ने भारतेन्दु तथा प्रसाद द्वारा प्रचलित मान्यताओं में परिवर्तन किया। चूंकि इससे पहले नाटककार नाट्यशाला की मानसिक परिकल्पना करके नाटक लिखता रहा था और वह अपने मस्तिष्क की रंगशाला में अद्भुत और आश्चर्यजनक प्रयोग कर रहा था।[6] फिर भी मस्तिष्क में इन रंगशालाओं के प्रयोग ने नाट्य विद्या को नये आयाम प्रदान किये और रंगमंच की दृष्टि से नाटक विद्या में कलात्मकता का गुण आया। इस युग में भी गीती नाटक रचना कार्य जारी रहा। भगवती चरण वर्मा द्वारा 'तारा', उदयशंकर भट्ट ने 'मत्सय गंधा', सुमित्रानंदन पंत ने 'शिल्पी', सेठ गोविन्द दास ने 'स्नेहास्वर्ग' आदि नाटकों की रचना की।

वस्तुतः प्रसादोत्तर युग के बाद भी हिन्दी साहित्य में नाटक विद्या का विकास जारी रहा और धर्मबीर भारती ने 'अंधायुग', दुष्यंत कुमार ने 'एक कंठ विषपायी', नरेश मेहता ने 'संशय की एक रात', गिरिजा कुमार माथुर ने 'पृथ्वी कल्प', भारतभूषण अग्रवाल ने 'अग्निलोक', लक्ष्मीनारायण ने 'सूखा सरोवर' गीति नाटकों की परम्परा को

जारी रखा। इसमें धर्मबीर भारती का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। उनके द्वारा रचित अंधायुग ने हिन्दी गीति नाटक परम्परा को नई दिशा दी। अतः इसे हिन्दी रंगमंच की दृष्टि से काफी सफल नाटक माना जाता है।

सारांश– इस तरह हिन्दी नाटक साहित्य के उद्भव एवं विकास यात्रा में भारतेन्दु युग को स्वर्णकाल माना जाता है तथा प्रसादयुग को शिल्पकला की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण युग माना जाता है। इससे पहले द्विवेदी युग को सुधारवादी काल के रूप में जाना गया। यद्यपि नाटक विद्या अति प्राचीन है और समय के अनुसार इसमें बदलाव भी आते रहे हैं। चाहे कोई भी युग हो नाटकों की सामाजिक उपयोगिता हमेशा बरकार रही है। आज भी नुक्कड़ नाटकों के रूप में नाटक विद्या काफी लोकप्रिय है और भविष्य में भी इसके लोकप्रिय बने रहने की संभावना है।

सन्दर्भ सूची–

[1] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, नाटक, पृ0 5.

[2] भगवती प्रसाद शुक्ल, प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक, पृ0 2.

[3] रामजन्म शर्मा, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक, पृ0 48.

[4] भगवती प्रसाद शुक्ल, प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक, पृ0 10.

[5] लक्ष्मीराय, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकः चरित्र सृष्टि के आयाम, पृ0 64.

[6] विश्वभावन देवलिया, नाट्य प्रस्तुतिकरणः स्वरूप और प्रक्रिया, पृ0 106.